दिनांक–18.02.2025

B.A.PART - III HONS. (Philosophy)

लोक संग्रह की अवधारणा

स्वार्थ से ही सभी प्रकार की विपत्तियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। सभी प्रयास स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं होते। स्वार्थ से कर्म छोटा और बन्धनयुक्त हो जाता है। मानव के लिए मुक्ति पाना उसका मुख्य लक्ष्य है और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसे बन्धन तोड़ने पड़ते हैं तब जाकर उसे परम आनन्द अर्थात् मुक्ति मिलती है तथा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वकर्म की आवश्यकता नहीं होती बल्कि लोक सेवा की आवश्यकता होती है। हमारे पास जितनी समझ, समय, सामर्थ्य और सामग्री है, उसी से हम दूसरों की सेवा करते हैं तो वह सेवा लोक हितकारी होगी। इसी बात को ध्यान में रखकर गीता में लोक संग्रह का वर्णन किया गया है।

गीता में व्यावहारिक नैतिकता के स्तर में लोक संग्रह को अर्थात् सामाजिक कल्याण को परम पुरुषार्थ माना है। गीता की यह स्पष्ट मान्यता है कि आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह को ध्यान में रखकर किये गये कर्म से ही व्यक्ति संसिद्धी प्राप्त करता है। नैयायिक **जयन्त भट्ट** के अनुसार, ''लोक स्थिति अर्थात् सामाजिक सन्तुलन को परम पुरुषार्थ कंहा है।'' महानिर्वाण तन्त्र में लोक श्रेय को नैतिक मानक माना गया है।

गीता के अनुसार सर्वभूम हित के लिए विद्वान पुरुष को अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए। आसक्ति रहित एवं (कारण) हेतु रहित होकर समस्त भूतों के प्रति अहिंसा, अक्रोध, अद्रोह, करुणा, सत्य, परोपकार व सद्भावना आदि धर्मों का पालन दैवी सम्पदा के लक्षण माने गये हैं। दैवी सम्पदा दैवतुल्य पुरुष के गुण या ईश्वरीय गुणों को कहते हैं जिनके अभ्यास से मनुष्य परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

गीता में सर्वभूत हित को सर्वोच्च आदर्श माना गया है। जो मनुष्य समस्त जीवों के हित में लीन है वह ईश्वर को प्राप्त होता है।

डॉ. श्रवण कुमार मोदी
सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग
शिवदेनी राम अयोध्या प्रसाद महाविद्यालय
बारा चकिया,पूर्वी चम्पारण
मो0–9608685335
Email Id- shrawankumarmodi1973@gmail.com